9

ज्ञानी जीवनि के भय...

ज्ञानी जीवनि के भय, होय न, या परकार।।टेक।।
इह भव, परभव, अन्य, न मेरो, ज्ञानलोक मम सार।
मैं वेदक इक ज्ञान भाव को, नहिं पर वेदन हार।।१।।
ज्ञानी जीवनि के भय.....

निज स्वभाव को नाश न तातैं चहिये नहि रखवार।
परम गुप्त, निज रूप सहज ही, पर का तहँ न संचार।।२।।
ज्ञानी जीवनि के भय .....

चित् स्वभाव निज प्राण तास को, कोई नहीं हरतार।
मैं चित् पिण्ड, अखण्ड, न तातैं, अकस्मात भय भार।।३।।
ज्ञानी जीवनि के भय .....

होय निशंक स्वरूप अनुभवैं, जिनके यह निर्धार ।
मैं सो मैं, पर सों मैं नाहीं, 'भागचन्द' भ्रम डार ।।४।।
ज्ञानी जीवनि के भय, होय न, या परकार।

ज्ञानी जीव को किसी भी प्रकार के अर्थात् लोक में जो सात प्रकार के भय कहे जाते हैं वो भय नहीं होते हैं ।।टेक।।

ज्ञानी जीव विचार करता हैं कि यह लोक या पर लोक आदि कोई भी लोक मेरा नहीं हैं, मेरे लिये तो एक मात्र ज्ञान लोक ही सारभूत हैं। मैं तो एक मात्र ज्ञान भाव का वेदक हूँ, और मैं पर का वेदन नहीं करता।।१।।

मेरे आत्मस्वरुप का कभी नाश नहीं हो सकता, इसलिये मुझे किसी की सुरक्षा की आवश्यकता नहीं हैं। मैं अपनी मर्यादा में रहने वाला, सहज स्वरुपमयी हूँ और मेरे स्वरुप में पर का प्रवेश नहीं हैं।।२।।

मैं चेतन स्वभाव वाला हूँ और मेरे प्राणों का हरण कोई नहीं कर सकता। मैं चेतना का पिण्ड, अखण्ड हूँ इसलिये मैं अकस्मात् भय से रहित हूँ।।३।।

कविवर भागचन्दजी कहते हैं कि जिनको आत्म स्वरुप का निश्चय हो जाता हैं, वे जीव अपने स्वरुप को निशंक अनुभव करते हैं। वे भ्रम का नाशकर विचार करते हैं कि मैं पर से भिन्न आत्म स्वरुपमयी हूँ।।४।।